रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स नं० १५

दो सवाल

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १७ सम्पादक : मगनभाअी प्रभुदास देसाअी अंक ८

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–९

अहमदाबाद, शनिवार, ता० २५ अप्रैल, १९५२

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली

['हरिजनसेवक' के पिछले अंकमें डॉ० राजेन्द्रप्रसादका जो भाषण छपा था, अुसका बचा हुआ हिस्सा नीचे दिया जाता है।]

२

यह ठीक है कि किसी सीमा तक हमारी शिक्षा-संस्थायें शिक्षाके प्रथम प्रयोजनको पूरा करती हैं। अिन संस्थाओंके सदस्योंको पिछली पीढ़ियोंकी संचित अनुभूतिसे किसी सीमा तक परिचित अवश्य कराया जाता है। किन्तु अिस परिचय करानेका जो अुद्देश्य है, अर्थात् विवेक या विचार-बुद्धिको सजग, सक्षम और सामर्थ्यवान बनाना, वह पूरा नहीं हो रहा है। हमारी नअी पीढ़ीके युवक-युवती विचारपुंज नहीं हो पाते। यह ठीक है कि अिन शिक्षा-संस्थाओंसे भी यदा कदा कुछ विरले व्यक्ति निकलते हैं, जिनकी विवेक-बुद्धि और विचार-शक्ति पूर्णरूपेण सजग और सामर्थ्यवान होती है। किन्तु अिन अिने-गिने व्यक्तियोंके नाम पर ही यह कहना ठीक न होगा कि ये शिक्षा-संस्थायें मानवके मानसपटोंको खोल रही हैं और अुसे ज्योतिर्मय कर रही हैं। मेरा यह विचार है कि अिस दिशामें अुनकी असफलताके अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख कारणोंकी ओर संकेत कर देना अनुचित न होगा।

अुनमें से अेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण तो यह लगता है कि पिछली पीढ़ियोंकी जिस अनुभूतिसे हमारी शिक्षा-संस्थायें हमारे युवक-युवतियोंका परिचय करा रही हैं, अुसके बहुत बड़े भागका अिन युवक-युवतियोंके अपने निजी दैनिक जीवन अथवा अपने चारों ओरके जगत् और अपने सामूहिक जीवनसे कोअी विशेष सम्बन्ध नहीं है। अतः अतीतकी वे बातें अिन युवक-युवतियोंको कुछ अनपहचानी, कुछ अनुपयोगी, कुछ अछूती-सी लगती हैं और वे अुनके मस्तिष्कका भार बनकर रह जाती हैं, जिन्हें वे संस्थासे निकलनेके पश्चात् बहुत जल्दी ही भूल जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि जिस भाषा-माध्यम द्वारा अिस अतीतकी अनुभूतिसे अुनका परिचय कराया जाता है, वह भी अुनके दैनिक और सामूहिक जीवनकी वस्तु नहीं है और अिसलिअे पूरा प्रयास करने पर भी अुनके लिअे कुछ अपरिचित-सी ही बनी रहती है। अतः अतीतकी अनुभूति अुनके विवेक-दीपको ज्योतिर्मय करनेके लिअे दियासलाअी न होकर अुस दीपकके तेलको सोखनेवाला सोख्ता ही रहती है। जहां अतीतकी अनुभूति अुनकी बुद्धिके सामर्थ्यको सहस्र-गुना शक्ति प्रदान करनेवाला लीवर होनी चाहिये, वहां वह हमारी बुद्धि और विवेकको पंगु और अपाहिज करनेवाला कोढ़ बन गअी है।

किन्तु बात अितनी ही नहीं है। शिक्षाके अन्य दो प्रयोजनोंको पूरा करनेका कार्य तो हमारी शिक्षा-संस्थायें लगभग कर ही नहीं रही हैं। हमारे यहां संभवतः अैसी कोअी विरली ही संस्था होगी जहां अिस बातका प्रयास किया जाता हो कि व्यक्तिको अितना कार्यकुशल बना दिया जाये कि वह अपने हाथके परिश्रमसे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिअे आवश्यक धन-सामग्री पैदा कर सके। व्यवसाय, कृषि, अुद्योग अित्यादिकी व्यावहारिक प्रशिक्षाका प्रबन्ध तो हमारे यहां लगभग नहीं के बराबर है। हमारे प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयोंका तो अिस व्यावहारिक अभ्याससे कोअी वास्ता है ही नहीं। हमारे अुच्च शिक्षालयोंमें से भी अिने-गिनोंको छोड़कर दूसरोंका अुस बातसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। अुनमें से लगभग सभी अपने विद्यार्थियोंको पिछली पीढ़ियों या वर्तमान पीढ़ीके प्रौढ़ लोगोंके कुछ विचारोंसे परिचय करानेमें संलग्न हैं। स्वभावतः यह परिणाम हो रहा है कि अिन शिक्षालयोंके स्नातक वाक्चतुर भले हों किन्तु कार्यकुशल नहीं होते। जब तक विदेशी साम्राज्यके दलालकी हैसियतसे अुन्हें अपना जीवन चलाना पड़ता था, तब तक तो अुनकी वाक्चातुरी अुनको लाभदायक थी। किन्तु अब जब अपनी गाढ़ी मेहनतसे हमें नवभारतका निर्माण करना है, अुस समय अिस वाक्चातुरीका वैसा महत्त्व हो ही नहीं सकता। परिणाम यह हो रहा है कि हमारे यहांका वाक्चतुर स्नातक भी आज जीवनमें अपने लिअे स्थान बनानेमें सफल होनेमें पर्याप्त कठिनाअी और असफलता अनुभव कर रहा है।

अितना ही क्यों। वर्षोंके परिश्रमको अिस प्रकार अपने वैयक्तिक जीवनके लिअे अनुपयोगी और फलहीन होते देखकर अनेक युवकोंके मनमें अपने भाग्य और अपने भाअियोंके प्रति अेक प्रकारका अंध रोष पैदा हो रहा है और वे यह नहीं समझ पा रहे हैं कि क्या करनेसे अुन्हें अपनी मुश्किलोंसे छुटकारा मिल सकता है। साथ ही हमारे शिक्षालयोंमें पढ़नेवाले युवक-युवती आज अतीतकी अुस अनुभूतिका भी कोअी परिचय हासिल नहीं कर पा रहे हैं, जिसका अुन्हें वहां परिचय करानेका प्रबन्ध है। मैं समझता हूं कि शिक्षाके स्तरमें गिरावटकी जो आज आम शिकायत है, अुसका बड़ा कारण यही है कि हमारे नवयुवकों और नवयुवतियोंको अुस शिक्षा-प्रक्रियासे लाभ नहीं पहुंचता, जो हमारे यहांके हर प्रकारके शिक्षालयोंमें आज जारी है।

अिस विषका प्रसार वैयक्तिक क्षेत्रमें ही सीमित न रहकर आज हमारे सामूहिक क्षेत्रमें भी हो रहा है। हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था हमारी नअी पीढ़ीके लोगोंको सामूहिक जीवनके लिअे आवश्यक गुणोंका अभ्यास नहीं कराती। अैसी सूरतमें नअी पीढ़ीके लोगोंमें यदि अुन गुणोंका अभाव हो, जो सुन्दर और सफल सामूहिक जीवनके लिअे आवश्यक हैं, तो अिसमें कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है। शिक्षा-व्यवस्थाका यह ध्येय और प्रयोजन ही नहीं मालूम पड़ता है कि वह नअी पीढ़ीके लोगोंको सामूहिक जीवनके लिअे आवश्यक गुणोंमें दीक्षित करे।

सच तो यह है कि प्रयोजनकी दृष्टिसे हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था कुछ वैसी ही असंतुलित और बेढंगी है, जैसा कि मटकी जैसे पेट और ककड़ी जैसी बांह और पांववाला शरीर होता है। किसी भी कारणसे क्यों न हो, आज हमारी शिक्षा-संस्थाओंका सारा प्रयास अपने विद्यार्थियोंको ज्ञानके सीमित स्वरूपसे परिचित करा देना ही है, व्यक्तिको कार्यकुशल और सहजीवी बनानेका नहीं। अतः मैं समझता हूं कि अन्य सुधारोंके साथ-साथ हमारी शिक्षा-व्यवस्थामें अुसके अुद्देश्योंमें संतुलन स्थापित करनेकी भी आवश्यकता है।

हमें अिस बात पर विचार करना चाहिये कि हमें किस संख्यामें विचारक और कार्यकुशल लोग तैयार करने हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि हर युग और हर देशमें विचारकों और कर्मियों दोनोंकी ही आवश्यकता होती है। किन्तु जिन परिस्थितियोंमें आज हमारा देश है, अुनमें हमें कोरे विचारकोंकी अपेक्षा कर्मियोंकी अधिक आवश्यकता है। अपने करोड़ों देशवासियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिअे हमें शीघ्रातिशीघ्र अपना आर्थिक अुत्पादन बढ़ाना है। किन्तु अुसके बढ़ानेकी शर्तोंमें यह भी शामिल है कि हमारे यहांके लोगोंका स्वास्थ्य अच्छा हो और वे आधुनिक आर्थिक और औद्योगिक संगठन और प्रक्रियाओंसे परिचित हों। अिन तीनों बातोंके लिअे ही हमें लाखों कर्मियोंकी आवश्यकता है। किन्तु अिन सब कर्मियोंको यह समझ लेना होगा कि केवल अपने कौशलके आधार पर अुनको यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे अपने देशके अन्य भाअियोंसे बहुत अधिक पारिश्रमिक पायें। वरन् अुन्हें तो अिस कार्यमें अिस विचार और विश्वाससे लगना है कि कष्ट सहकर भी अुन्हें आगेकी पीढ़ियोंके जीवनको सम्पन्न बनानेके साधन जुटाने हैं और प्रबन्ध करना है। अतः मेरा विचार है कि हमारी शिक्षा-संस्थाओंमें कार्यकुशलता पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये और व्यावसायिक प्रशिक्षा प्रदान करनेका प्रबन्ध होना चाहिये। यदि हर नगर और हर जिलेमें अिस प्रकारके व्यावसायिक प्रशिक्षा केन्द्र बन जायें अथवा यदि वहांकी वर्तमान शिक्षा-संस्थायें अपना अिस प्रकार कायाकल्प कर लें, तो मैं समझता हूं कि हमारी शिक्षा-व्यवस्थाका भोंडापन बहुत कुछ कम हो जायेगा।

साथ ही मैं समझता हूं कि सामूहिक गुणोंकी दीक्षाका भी हमारी शिक्षा-संस्थाओंमें प्रबन्ध होना चाहिये। सामूहिक अुद्योगकी शिक्षा केवल क्रीड़ा-क्षेत्रमें ही न दी जाकर वह जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें भी दी जानी चाहिये। अुसका अेक प्रकार यह हो सकता है कि शिक्षालयोंमें अैसी टीमें बनें, जो सामुदायिक विकासके कार्योंमें होड़ बद कर भाग लें और अिस प्रकार जन-जीवनसे परिचित ही न हों, वरन् अुससे हिलमिल भी जायें।

अिसमें तो कोअी शंका ही नहीं कि विश्वविद्यालयोंको विशिष्टतया विचारकी जीवनदायिनी ज्योतिका केन्द्र होना ही चाहिये। वहां हर प्रकारकी गवेषणाके लिअे व्यवस्था होनी चाहिये और विशेषतया अुस प्रकारकी गवेषणाकी व्यवस्था तो होनी ही चाहिये, जिससे कि वहांकी प्रादेशिक समस्याओंका हल किया जा सके। यद्यपि विश्वविद्यालयको दैनिक जीवनके कोलाहलसे दूर रहना आवश्यक होता है, तथापि अुसका यह अर्थ नहीं कि वह जीवनसे अपना सम्पर्क सर्वथा न रखे। वरन् अुसकी सफलता तो तभी है जब वह अपने प्रदेशका अैसा नेता हो, जो वहांकी सब समस्याओंको समझ-बूझकर अुनके सफल हलको वहांके लोगोंको बता सके। अपने अिस अुचित स्थानको हमारे विश्वविद्यालयोंने अभी नहीं अपनाया है, किन्तु अिसको अपनाये बिना वे अपनेको सफल और सार्थक नहीं कर सकते। (संपूर्ण)

केनियामें जातीय साम्राज्यवाद

[ब्रिटिश शासक आजकल अपने केनिया अुपनिवेशमें वहांकी प्रजासे जैसा व्यवहार कर रहे हैं, अुससे हम सबको गहरा दुःख होता है। गांधीजीके शब्दोंमें अुसे 'शेरकी क्रूरता' (leonine violence) कहकर ही अुसका ठीक वर्णन किया जा सकता है। माअू-माअू आन्दोलनको कुचलनेके लिअे शासक आधुनिक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्ज अपने देशकी सैनिक शक्तिका भरपूर प्रयोग कर रहे मालूम होते हैं। माअू-माअू आन्दोलनमें हिंसा है और वह गलत तथा अविचारपूर्ण है, यह बात मानी जा सकती है। पर अुसके पीछे रहा प्रजाका असन्तोष समझमें आता है। विदेशी शासकोंको अिन आन्दोलनकारियोंसे सहानुभूतिका बरताव करना चाहिये, क्योंकि अुनसे हम ज्यादा समझकी आशा रखते हैं। बेशक, आतंक और खून-खराबीसे किसीका कोअी भला नहीं हो सकता; अिसी तरह कानून और व्यवस्थाके नाम पर दमन और अत्याचार करनेमें भी कोअी लाभ नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाकी तरह पूर्व अफ्रीकामें भी जो कुछ हो रहा है, वह शासकोंका कोअी घरेलू सवाल नहीं है। क्योंकि अब यह स्पष्ट हो गया है कि अिस अंधेरे महाद्वीपमें हम जो घटनायें हो रही सुनते हैं, अुनकी जड़ गोरे शासकोंके जाति-विषयक साम्राज्यवादमें और अुससे पैदा होनेवाले सांस्कृतिक संघर्षमें है। 'पीस न्यूज़' (लंदन, २७ फरवरी, '५३)में प्रकाशित श्री फेनर ब्रॉकवेका यह लेख हमें केनियाके अिस सवालकी जड़में ले जाता है और अुसकी दूसरी तसवीर पेश करता है।
१७-४-'५३ — म० प्र०]

जोमो केन्याटा, जिन पर माअू-माअू संघटनका संचालन करनेका आरोप लगाकर मुकदमा चलाया जा रहा है (अब अुन्हें अिसी अपराधमें सात सालकी कैदकी सजा दी जा चुकी है), पन्द्रह वर्ष पहले लन्दन स्कूल ऑफ अिकॉनामिक्समें विद्यार्थी थे।

अपनी डिग्री परीक्षाके 'थीसिस' के लिअे अुन्होंने अपने कबीले गीकूयूके जीवन पर निबन्ध लिखा था। यह निबन्ध अितना रोचक और मूल्यवान माना गया कि प्रो० मलिनौस्कीने अुसे प्रकाशित करनेकी सिफारिश की और अुसकी प्रस्तावना खुद लिखी। यह निबन्ध दूसरे विश्वयुद्धके ठीक पहले 'फेसिंग माअुन्ट केनिया' नामसे निकला था। 'सेकर और वारबर्ग' (Secker and Warburg)ने अभी अुसे दूसरी बार प्रकाशित किया है। (१८ शि०)

यह पुस्तक जब पहली बार प्रकाशित हुअी, तब मैंने अुसे पढ़ा था। अभी मैं अुसे फिर पढ़ गया हूं। केनियामें आज जो घटनायें हो रही हैं, अुन पर अिस किताबसे काफी प्रकाश पड़ता है। पुस्तक नृवंशशास्त्रकी दृष्टिसे लिखी गयी है, तो अुससे पढ़नेवाला प्रकाश भी अुसी किस्मका है, राजनीतिक नहीं।

अभी जब लेसली हेल और मैं केनिया गये, तो अफ्रीकामें फैले हुअे असन्तोषके आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारण हम लोगोंको अेकदम स्पष्ट हो गये। मि० लिटलटनकी बात छोड़ दें, तो दूसरा कोअी भी आदमी यह देखनेमें चूक नहीं सकता कि वहां जो कुछ हो रहा है, वह रंग-भेद और जमीनकी भूखका परिणाम है। लेकिन निराशासे पैदा हुअी अिस खीझ और क्रोधकी सामाजिक पृष्ठभूमि समझनेमें हमें थोड़ा समय लगा। और जब वह चीज हमारी समझमें आयी तो मालूम हुआ कि अशांति और असन्तोषका सबसे गहरा कारण वही है।

सामुदायिक जीवनके मुकाबलेकी कोअी चीज नहीं

अेक वाक्यमें कहें, तो ब्रिटिश शासनने गीकूयू (या कीकूयू, जैसा कि आजकल अुन्हें ज्यादातर कहा जाता है) का पुराना सामुदायिक जीवन (tribal life) तोड़-फोड़ दिया है और अुसकी जगह कोअी अैसी चीज अुन्हें नहीं दी है, जिससे वही समाधान मिले।

'फेसिंग माअुन्ट केनिया' पुस्तक प्रचारकी शैलीमें नहीं लिखी गयी है, यद्यपि अपने लोगोंकी आजादीके लिअे लेखककी अुत्कट भावना अुसमें जहां-तहां प्रगट हो जाती है। वह अुनकी जातिके पुराने रहन-सहन, रीति-रिवाजों, सामाजिक विधिव्यवस्था और रंगरूपकी यथार्थ तसवीर पेश करती है। केन्याटा अपनी जातिके अुन रिवाजोंको, जो युरोपीय लोगोंको बहुत घिनौने मालूम होंगे, छिपाते नहीं हैं, बल्कि अिस पुस्तकमें खुलकर अुनकी चर्चा करते हैं। और अिससे अुनकी जातिके सामुदायिक जीवनका जो खेदजनक नाश हुआ है, वह हमारे सामने और भी स्पष्टतापूर्वक प्रगट होता है।

हमारे कर्तव्यकी असफलताका मर्म यही है; अिस जातिके जन-जीवनका हमने नाश कर दिया और अुसके परिणामस्वरूप अुस जातिके कुछ लोग आज माअू-माअू आन्दोलनके रूपमें प्रगट होनेवाले निर्दय अपराध करनेके लिअे मजबूर हुअे।

अिस जातिके संघटनका बुनियादी आधार परिवारकी, समान अुम्रके व्यक्तियोंकी और पूरी जातिकी अेकता पर था। अिनमें हरअेककी अपनी निजी अेकता होती थी तथा लोगोंके मनमें अुसका स्पष्ट भान होता था। परिवार अपनी खेती मिलकर करता था, और जब वह बहुत बड़ा हो जाता था, तब तीसरी या चौथी पीढ़ी अपनी नयी खेती शुरू करती थी। समान अुम्रके लड़के-लड़कियां जिन्दगी भर हमेशा अेक सुसम्बद्ध जमातकी तरह हिल-मिलकर रहते थे। युवावस्थामें साथ-साथ खेलते हुअे वे बड़े होते और बड़े होने पर अपनी जिम्मेदारियां संभालते। सारे कबीलेकी व्यवस्था कबीलेके बुजुर्गोंकी अेक चुनी हुअी समितिके जरिये होती। अुनका और अेक हद तक लड़के-लड़कियोंकी माताओंका यह कर्तव्य था कि वे अुन्हें सामाजिक कर्तव्य करना सिखायें, और व्यक्तियोंके आपसी झगड़ोंका निपटारा करें। अपनी जातीय अेकताका यह तिहरा भान ही जातिके जीवनकी सजीवताका मूल था।

जमीनका सवाल

अब यह बात या तो नष्ट हो गयी है या नष्ट हो रही है। परिवारकी अेकता जमीनकी भूखने तोड़ दी। नयी बढ़ती हुअी सन्तानके लिअे बहुत कम जमीन है, और नयी जमीन कोअी है नहीं, जहां वे जा सकें। समान अुम्रके लड़के-लड़कियोंमें जो अेकता होती थी, युरोपीय मिशन-संस्थाओं और अफ्रीकन चर्चमें विभाजन हो जानेके कारण अब वह भी नहीं रह गयी है। और बुजुर्गोंकी समितिकी जगह आ गये हैं ब्रिटिश जिला-अधिकारी, और ब्रिटिशों द्वारा चुने गये मुखिया, जिनके अधिकारमें काफी बड़े-बड़े अिलाके होते हैं। जिला-समितियां होती हैं, पर अुनके अधिकार बहुत मर्यादित होते हैं। अुस स्थानीय लोकतंत्रकी जगह, जो जनताके जीवनका प्रकाशन करता था, अब नौकरशाही आ गयी है, जो जनताके जीवनका दमन करती है।

बेशक, यह तसवीरका सिर्फ अेक पहलू है। ब्रिटिश शासनने कबीलोंके आपसी युद्ध खतम कर दिये हैं। अिससे हजारों बच्चोंके प्राणोंकी रक्षा हुअी है, और सफाअी तथा स्वास्थ्यके नये विचारोंसे कअी हजारोंका जीवन पहलेसे ज्यादा लम्बा हो गया है। लेकिन अुसे अिन दिशाओंमें जो कामयाबी मिली है, अुसने जनसंख्याको बढ़ाकर जमीनकी समस्याको और भी अुग्र कर दिया है। अिसके सिवा, अुसके द्वारा की गयी शिक्षाकी व्यवस्था अुतनी काफी नहीं रही कि लोगोंके मन पर जादू-टोने आदिमें विश्वासका जो असर चला आ रहा था, वह मिट जाता। और यहां हमने अुन पर जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अन्याय किये हैं, अुनके कारण हमारे साथ सहयोग करनेकी अुनकी अिच्छा नष्ट हो गयी है।

अिसका परिणाम यह हुआ है कि जनतंत्रकी सुविधा न पाकर अुक्त जातिके कुछ लोग अपने पुराने जीवनकी बुराअियोंकी ओर लौट पड़े हैं।

अिस सवालका हल यह है कि अिन लोगोंको नया और समाधानकारक जीवन गढ़नेका अवसर देना चाहिये। अधिक स्पष्ट शब्दोंमें अिसका अर्थ यह है कि अुन्हें जाति और कबीलेकी लोकशाही मिलनी चाहिये, अुनकी जमीनकी भूख पूरी होनी चाहिये, सहकारी तौर पर आधुनिक किस्मकी खेती शुरू होनी चाहिये, अुनकी दूसरी तीव्र आर्थिक शिकायतें दूर होनी चाहियें, सार्वत्रिक शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिये, रंग-भेदके कारण होनेवाला अपमान बंद होना चाहिये, और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जातीय समानताकी ओर बढ़ना चाहिये, ताकि अन्याय रचनात्मक रीतिसे दूर किये जा सकें।

आज अपनी निराशा और खीझ शांत करनेके लिअे अुनमें हिंसा-कार्य करनेकी जो प्रेरणा काम कर रही है, वह तभी दूर होगी और तभी सुसंयोजित नये समाजका निर्माण हो सकेगा।

(अंग्रेजीसे) **फेनर ब्रॉकवे**

भूदान-आन्दोलनमें प्राप्त भूमि

[१० अप्रैल, १९५३ तक]

क्रमांक	प्रांत	भूदान-प्राप्ति अेकड़में
१.	आसाम	२५६
२.	आन्ध्र	७,०९७
३.	अुत्कल	५,१०२
४.	अुत्तरप्रदेश	४,७४,५२९
५.	कर्नाटक	५९५
६.	केरल	५,८००
७.	गुजरात	५,५०१
८.	तामिलनाड	६,९७६
९.	दिल्ली	१,१२४
१०.	पंजाब व पेप्सू	१,०४५
११.	बंगाल	१०२
१२.	बंबअी नगर	. . .
१३.	बिहार	५,५०,०२७
१४.	मध्यप्रदेश	१५,०४२
१५.	मध्यभारत	२,४९१
१६.	महाराष्ट्र	५,०००
१७.	मैसूर	३४३
१८.	राजस्थान	२२,०७२
१९.	विंध्यप्रदेश	२,३८२
२०.	सौराष्ट्र	३,०००
२१.	हिमाचल प्रदेश	१,००६
२२.	हैदराबाद	४२,१७७
	कुल	११,५१,६६७

नोट: अकेले हजारीबाग जिलेमें ४,००,०२७ अेकड़ भूमि प्राप्त हुअी है, जो बिहार प्रांतकी भूदान-प्राप्तिमें शामिल है।

कृष्णराज मेहता
दफ्तर मंत्री,
अ० भा० सर्व-सेवा-संघ

सेवाग्राम (वर्धा)

हरिजनसेवक

२५ अप्रैल १९५३

दो सवाल

अेक भाअी कुछ सवाल पूछते हैं और लिखते हैं कि अुनके जवाब सार्वजनिक रूपमें भी दिये जायं तो अुन्हें कोअी अेतराज नहीं है। अुनका मुख्य सवाल यह है कि गोवध बन्द करनेके लिअे कानून क्यों नहीं बनाया जाय? अुनका कहना है कि अगर कानूनसे शराबबन्दी करना ठीक हो, तो कानूनसे गोवध बन्द करनेमें क्या आपत्ति है? वे दलील करते हैं कि अगर यह कहा जाय कि जब तक लोग स्वेच्छासे गोसेवाका काम हाथमें न लें, तब तक सरकार अिस मामलेमें कुछ नहीं कर सकती, तो अुसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि जब तक लोग स्वेच्छासे शराब पीना न छोड़ें, तब तक सरकार शराबबन्दीका कानून कैसे बना सकती है?

अूपरसे देखने पर असरकारक लगनेवाली अिस दलीलमें भारी तर्कदोष है। वह यह कि शराबबन्दी और गोवध-बन्दीके बीच तुलना करना ठीक नहीं है। शराबके साथ गोवधकी तुलना करके बात करनेमें अिन दोनोंकी स्थितिका फर्क ध्यानसे बाहर रह जाता है। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि गोवध बन्द करनेका विचार न किया जाय। अुसके अपने ढंगसे अुस विषय पर विचार किया जाना चाहिये।

अब हम दोनोंकी स्थितिमें जो फर्क है, अुसका विचार करें। शराब सरकार खुद बेचती है या अुसके दिये हुअे अिजारेसे ही बेची जाती है। शराब बुरी चीज है। वह व्यक्ति और अुसके परिवारको भ्रष्ट करती है, जिसके परिणाम समाजको भी भोगने पड़ते हैं। शराब मनुष्यके सिर पर चढ़कर बोलनेवाली नशेकी चीज है। अुसमें से गुनाहखोरी और दूसरे अनेक अुपद्रव पैदा होते हैं। अिसलिअे अिसका व्यसन बहुत बड़ी सामाजिक और वैयक्तिक बुराअी माना जाता है।

और अब तो यह भी साफ बात है कि व्यवस्थित दुकानोंमें बाकायदा शराब मिलती है, तो पीनेवाले ललचाते हैं और लाचार होकर अुस ओर खिंचे चले आते हैं। अिसलिअे अुन्हें अिससे बचानेका पहला अुपाय यह है कि अिस लोभकी घररूपी दुकानें बन्द कर दी जायं। सरकार बाकायदा शराब पीनेकी व्यवस्था रखे और यह भी चाहे कि लोग शराब न पीयें, तो ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं। अिसलिअे शराब या नशाबन्दीका कदम सरकारके लिअे अेक फर्ज हो जाता है। अिसका मतलब यह नहीं कि अिससे लोगोंको शराब न पीनेकी बात समझाना गैरजरूरी हो जाता है; बल्कि वस्तुस्थिति यह है कि कानूनसे दुकानें बन्द करनेका कदम अुठाया जाय तो ही यह समझानेका काम कामयाब हो सकता है।

अब गोवधकी बात लें। गाय-भैंसका कतल अनेक सामाजिक और आर्थिक कारणोंसे पैदा होता है और चालू रहता है। अुन कारणोंके निर्मूल होने पर ही वह रुक सकता है। और अिनका मांस खाना कोअी खराब काम है, अैसा सब लोग नहीं मानते। लेकिन समाजके आर्थिक जीवनमें गाय और अुसकी औलाद बड़े कामकी है, अिसलिअे हम अुसका पालन-पोषण करना चाहते हैं। और हिन्दूधर्मने अिस भावनाको हमारे मनमें धार्मिक वृत्तिका रूप देने तक बढ़ाया है। लेकिन यहां हम अिस चर्चामें न पड़ें। शराब और गोवधके बीच फर्क यह है कि सरकारका अिन दोनोंके साथ बिलकुल अलग तरहका सम्बन्ध है। शराब सरकार खुद बेचती-बेचाती है; लेकिन गोवधमें अैसी बात नहीं है — अुसका कारण समाजमें निहित है। फिर भी सरकार अुपयोगी ढोरोंके कतलकी मनाही कर सकती है, और वैसे कानून बनाये भी जाते हैं। साथ ही यह फर्क भी याद रखना चाहिये कि सब जातियों और सब लोगोंको यह बात पसन्द नहीं है कि गोवध बिलकुल ही बन्द हो जाय। अतः अुसके लिअे कानून पहले नहीं बन सकता। हमारी धार्मिक भावना हमारे अपने पालनके लिअे है; अुसे व्यक्तिके लिअे छोड़ कर मैंने केवल सामाजिक और आर्थिक दृष्टिसे अूपरका जवाब दिया है, क्योंकि सरकारोंके लिअे यही अुचित माना जा सकता है।

अुपरोक्त पत्रलेखकने अेक दूसरा सवाल पूछा है — सरकारकी अखबारोंको विज्ञापन देनेकी नीतिके बारेमें। वे कहते हैं, 'अपनेको लोकशाहीमें माननेवाले कहनेके बावजूद कोअी अखबार अपनी टीका करता है केवल अिसी कारण अुसे विज्ञापन देनेसे अिनकार करना क्या शोभाकी चीज है?' यह स्पष्ट है कि अभी हालमें 'टाअिम्स ऑफ अिण्डिया' के बारेमें जो सवाल अुठा है, अुस परसे ये भाअी अैसा पूछ रहे हैं। मैं अिस पत्रको खास ध्यानमें रखकर अुसके किस्सेकी विशेष चर्चामें पड़नेके बजाय अुसमें रहे हुअे प्रश्नका सामान्य विचार यहां पेश करता हूं।

शुद्ध भावसे या प्रामाणिक बुद्धिसे होनेवाली किसी भी प्रकारकी टीकाको लोकशाहीमें रोका नहीं जा सकता। यह टीका कभी-कभी गलत भी हो सकती है; अुसमें हकीकत या समझका भी दोष या गफलत होना संभव है। फिर भी लोकतांत्रिक सरकार अुसे रोके नहीं, यही अुसके लिअे शोभाकी बात मानी जाती है। अैसी गलती, गैरसमझ या हकीकतका दोष प्रामाणिक होगा तो वह सुधर जायगा अथवा पाठक और अखबार अुसके बारेमें जरूरी सवाल-जवाब कर सकेंगे।

लेकिन अिस स्वतंत्रताका विज्ञापनसे क्या सम्बन्ध? आज विज्ञापन अखबारोंकी आयका अेक बड़ा साधन है। अुसके बिना आजके अखबारोंका टिकना मुश्किल ही है। अिसलिअे जिस तरह व्यापारी ग्राहक खोजते हैं, अुसी तरह अखबार केवल ग्राहक ही नहीं, विज्ञापनदाता भी खोजते हैं। अिसलिअे अिसमें लोभ भी हो सकता है; और अिस लोभके कारण अखबार जैसे और जितने भी विज्ञापन आते हैं, वैसे और अुतने सब ले लेते हैं। और अुस हालतमें विज्ञापन अच्छे हैं या बुरे, सच्चे हैं या झूठे, अिस बातका विवेक शायद ही रखा जा सकता है। यहां तक कहा जाता है कि अैसा विवेक रखना जरूरी भी नहीं है। अिससे यह देखनेमें आता है कि अखबारकी कोअी निश्चित नीति हो, तो भी अुसमें अुस नीतिके खिलाफ बातोंके विज्ञापन आ सकते हैं! विज्ञापन लेनेमें भी विवेक होना चाहिये। लेकिन लोभ और स्वार्थके आगे यह बड़ा कठिन है। अिसलिअे गांधीजी तो यही कहते थे कि अखबारकी स्वतंत्रता कायम रखनी हो, तो विज्ञापन हरगिज न लिये जायं; क्योंकि अुसमें लोभके कारण फिसल जाने या विज्ञापन देनेवालेके दबावमें आ जानेका पूरा डर रहता है।

अब अिसका दूसरा पहलू लें। जिस तरह ग्राहकको अिस बातका अधिकार रहता है कि वह कौनसा माल कहांसे ले, अुसी तरह यह साफ बात है कि विज्ञापन देनेवालेको भी यह अधिकार हो सकता है कि वह कौनसे अखबारमें विज्ञापन दे। यह अधिकार अेक लोकतांत्रिक संस्था होनेके बावजूद सरकारको भी हो सकता है। अुसे अपना यह अधिकार प्रजाहितके ट्रस्टीके रूपमें, समाजकी सुरक्षितता और अुसकी नीति तथा विवेक या सुरुचिकी सर्व-साधारण जरूरतको देखकर आम लोगोंकी भलाअीके लिअे बरतना चाहिये; सरकारके और कामोंकी तरह अुसमें भी किसी तरहका अन्याय न होना चाहिये। अिसलिअे सरकारी विज्ञापन पाना अखबारोंका अबाधित अधिकार नहीं माना जा सकता। यदि अखबार विनय,

विवेक तथा सुरुचिका स्तर कायम न रखकर गिरने लगें या राज्य और प्रजाकी सुरक्षितताके लिअे खतरा पैदा करने लगें, तो अुनके प्रति जिस तरह प्रजा अपनी नापसन्दगी जाहिर कर सकती है, अुसी तरह सरकार भी कर सकती है; और जहां संभव हो वहां वह कानूनसे भी काम ले सकती है। अिसके मानी यह कि सरकार कड़वी-मीठी टीकाकी तरफ न देखे। जैसा कि शुरूमें कहा गया है, प्रामाणिक टीकाकी छूट तो रहनी ही चाहिये। लेकिन अखबार यदि सर्वसाधारण सुरुचि और सज्जनता आदिका भंग करने लगें, तो यह अुनकी स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छन्दता ही मानी जानी चाहिये। अिस ओर राज्य और प्रजाको ध्यान खींचना ही चाहिये। अखबारोंकी स्वतंत्रता भी अेक जिम्मेदारी है और अुसका दुरुपयोग न हो, अिस बातकी ओर सदा ध्यान रखना समाज और राज्यका काम ह।

पत्रलेखकके दूसरे छुटपुट सवाल अिन दो मुख्य सवालोंसे ही सम्बन्धित होनेके कारण मैं यहां अुनका जिक्र नहीं कर रहा हूं।

१३–४–'५३ **मगनभाअी देसाअी**

(गुजरातीसे)

हमारी महान विरासत

[डॉ० सुशीला नय्यर द्वारा ता० २–१२–'५२ को आगरा विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके सामने दिये गये गांधी-स्मारक-भाषणकी यह दूसरी किस्त है।]

२

गांधीजीका धर्म कुछ खास विधि-विधानों और व्रत-नियमोंके पालनमें ही समाया हुआ नहीं था। वे धर्मकी भावनामें विश्वास रखते थे और अुसीका आचरण करते थे। अपने धार्मिक अनुभवोंसे अुनका यह पक्का विश्वास हो गया था कि दुनियाके सारे बड़े-बड़े धर्मोंका मुख्य और महत्त्वपूर्ण सन्देश अेक ही है — सत्यकी प्राप्ति। और अिस तरह वे सर्वधर्म समभावमें विश्वास रखने लगे। धार्मिक सहिष्णुताका अुनके लिअे कोअी अुपयोग नहीं था, क्योंकि अुसका मतलब होता है दूसरे धर्मोंके प्रति मनमें आश्रयदाताकी भावना रखना। हम किसी अैसी चीजको ही सहन करते हैं, जो अुतनी अच्छी नहीं होती जितनी कि अुसे होना चाहिये। अगर हम दूसरे धर्मोंके प्रति सहिष्णुताका भाव रखते हैं, तो अुसका मतलब यह होता है कि अुन्हें हम अपने धर्मसे घटिया या हलके दर्जेके मानते हैं। यह चीज आपसी सद्भाव और मित्रताकी जड़को ही काट देती है, जो समानताके अनुभवके बिना संभव नहीं होते। अिसलिअे गांधीजी धर्मके मार्के (लेबल) को कोअी महत्त्व न देकर सीधे अुसके बुनियादी सिद्धान्तोंको ही पकड़ते थे। सत्य वह केन्द्र है, जिसके आस-पास सारे धर्म घूमते हैं। गांधीजीने तो यहां तक कहा कि सत्य ही अीश्वर है। विचार, वाणी और कर्मसे सत्य पर अटल रहना ही सारे धर्मोंका सार है।

गांधीजीकी सत्यकी अुपासना और लगनने ही अुनके जीवनमें क्रांति पैदा कर दी। दक्षिण अफ्रीकामें वे अेक सफल वकील थे। पर वे झूठे मुकदमे लेनेसे अिनकार कर देते थे, विफल सिद्ध हुअे ध्येयोंको मददको दौड़ते थे और अुन्होंने अपने पेशेको न्यायकी तथा गरीबों और दबे-कुचले लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेका साधन बना लिया था। अेक दिन यात्राके लिअे रवाना होते समय अुनके अेक मित्रने अुन्हें ट्रेनमें पढ़नेके लिअे अेक पुस्तक दी थी। वह रस्किनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) थी। बाकीकी कहानी आप सब जानते ही हैं। भारी भोजन कर लेनेके कारण वे सो न सके और अुन्होंने रातमें वह पुस्तक शुरूसे आखिर तक पढ़ डाली। रस्किनने अपनी पुस्तकमें अिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था कि समाजके लिअे अेक डॉक्टर, वकील और अेक मजदूर, भंगी या बूट पालिश करनेवालेके कामकी अेकसी कीमत है। अिसलिअे हर तरहकी अुपयोगी सामाजिक सेवाका अेकसा मेहनताना मिलना चाहिये और हर काम करनेवालेको — वह स्त्री हो या पुरुष — अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेके लिअे पूरा मेहनताना मिलना चाहिये। यह सिद्धान्त गांधीजीको खूब जंच गया। बुद्धिसे तो अुन्हें रस्किनके सिद्धान्तकी सचाअी पर विश्वास हो गया। लेकिन विचार, वाणी और कर्मके मेलका यह तकाजा था कि जिसे वे सही मानते हैं, अुस पर अमल भी करना चाहिये। दूसरे दिन सुबह गाड़ीसे अुतरनेके पहले अुन्होंने अपने जीवनको बदल डालनेका पक्का निश्चय कर लिया। अुन्होंने जमीनके अेक टुकड़ेके लिअे विज्ञापन निकाला और अपने परिवार और मित्रोंके साथ वहां बसकर आश्रम-जीवन स्वीकार कर लिया।

आपमें से कुछ लोग यह प्रश्न पूछ सकते हैं — आश्रम-जीवन क्या है? संक्षेपमें अिसका मतलब अिस सिद्धान्तको अमलमें लाना है — "हरअेकसे यथाशक्ति काम लिया जाय; हरअेकको अुसकी जरूरतके मुताबिक दिया जाय।" गांधीजीके विभिन्न आश्रमोंमें छोटे रूपमें सत्य और प्रेम पर आधार रखनेवाली अुनकी आदर्श समाज-व्यवस्था कायम करनेका प्रयत्न किया जाता था, जहां सब लोग अेक बड़े परिवारके सदस्योंकी तरह रहते और काम करते थे। ये आश्रम सत्यको अुन्होंने जैसा देखा था, अुसके अनुसार जीवन बितानेकी अुनकी अुत्कट अिच्छाके जीते-जागते नमूने थे। यह तो मानी हुअी बात है कि अिस प्रकारकी समाज-व्यवस्थाकी स्थापना केवल हृदय-परिवर्तनसे ही संभव हो सकती है, जबरदस्तीसे नहीं। गांधीवाद और साम्यवादका यह बुनियादी फर्क है। अनुभवने गांधीजीको सिखा दिया कि प्रेमके बिना सत्यका आचरण संभव नहीं है। सत्य और प्रेम या अहिंसा अेक ही सिक्केके दो पहलुओंकी तरह हैं। कोअी अुन्हें अेक-दूसरेसे अलग नहीं कर सकता।

लेकिन शायद आप कहेंगे — 'हम यह सब जानते हैं। आप जो कहती हैं, वह आदिकालसे कहा जाता रहा है।' मैं अिसे मंजूर करती हूं। ठीक यही बात मैं आपके सामने कहनेके लिअे खड़ी हूं। जो कुछ हम जानते और मानते हैं, अुस पर यदि हम अमल करें, तो दुनियाकी शकल ही बदल जाय और वह आजसे कहीं ज्यादा रहने लायक बन जाय। लेकिन हम अैसा नहीं करते। हम अपनी ही बुद्धि द्वारा बुने हुअे जालोंमें अपने आपको फंसने देते हैं। हम पर दलीलों, प्रभावशाली शब्दों और नारोंका प्रभुत्व होता है, जिन्हें हम तोतेकी तरह रटते रहते हैं। हम — और खासकर नौजवान लोग — 'वादों' के अिन्द्रजालमें फंस जाते हैं; हम किसी बातको जरूरतसे ज्यादा सादी बनाना चाहते हैं और सीधीसादी बातोंके लिअे नफरत बढ़ा लेते हैं। कठिनाअी यहीं है। जीवनमें 'वादों' का शासन नहीं चलता। और मामूली बातोंके अमलकी अुपेक्षा हमारे विश्वासकी जड़ोंको ही खोद डालती है। यह आजके बुद्धिजीवीके लिअे अभिशाप जैसा है। जैसा कि अेक अंग्रेज कविने कहा है, "कुछ सादी अुक्तियों और कुछ सादे विचारोंने" मुसीबतके समय दुनियाके लिअे "बुद्धि और विचारके सारे अभिमान" से कहीं ज्यादा काम किया है।

यह हम कब सीखेंगे कि बीसों सिद्धान्तोंसे अेक छोटेसे कामका महत्त्व कहीं ज्यादा है? हम सब सत्यका आदर करते हैं, अुसे अपनी अंजलि देते हैं। लेकिन क्या हमने अपने देखे हुअे सत्यके अनुसार कभी अपना जीवन पूरी तरह बितानेकी कोशिश की है? मुझे डर है कि अिसका अुत्तर 'नहीं' ही है। नतीजा यह है कि अविश्वासकी आगने हमारी भावनाको जला डाला है और सत्यके आचरणकी हमारी शिथिलताने हमें आदर्शवादके मूल्यके विषयमें शंकाशील और नास्तिक बना दिया है। हम यह मान लेते हैं कि सत्य और अुसका दूसरा पहलू अहिंसा केवल अैसे अुदात्त गुण हैं, जो आध्यात्मिक अुन्नतिके लिअे ही अुपयोगी हैं; राष्ट्रीय और

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रोंके हमारे सामाजिक और राजनैतिक व्यवहारोंमें अुन पर अमल नहीं किया जा सकता।

किसी महान आत्माका जीता-जागता अुदाहरण ही संभवतः अिस अविश्वास और आत्माका हनन करनेवाली नास्तिकता — जिस आध्यात्मिक रोगसे हम और सारी दुनिया पीड़ित है — को मिटा सकता है और अुन महान नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शोंके लिअे फिरसे मनुष्य-जातिमें श्रद्धा पैदा कर सकता है, जिनकी हर युगमें महान अुपदेशकों और पैगम्बरोंने घोषणा की है, लेकिन जो रीत-रस्मोंके अत्याचार और मानवके भीतर रही स्वभावगत जड़ताके कारण बार-बार जड़ और किताबी सिद्धान्तोंका रूप ले लेते हैं। हमारे जमानेमें महात्मा गांधीने वह जीता-जागता अुदाहरण हमारे सामने पेश किया। मेरा यह पक्का विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय बीतेगा और दुनियाकी मुसीबतें बढ़ेंगी, त्यों-त्यों दुनियाको गांधीजीकी ज्यादा जरूरत महसूस होगी और वे ज्यादा जीती-जागती शक्ति बनेंगे।

(अंग्रेजीसे) (अपूर्ण)

निराशाका कोअी कारण नहीं

बिहार कताअी-मंडल सम्मेलनमें कताअी-मंडलोंका वृत्तान्त सुननेके बाद विनोबाजीने सारे रचनात्मक कामकी ओर अिशारा करते हुअे अपने भाषणमें कहा:

"कताअी मंडलका जो काम हो रहा है, अुससे दिलको संतोष नहीं हुआ। हमारे छोटे-छोटे काम आज निस्तेज बनते जा रहे हैं। अिसलिअे नहीं कि वे छोटे हैं, बल्कि अिसलिअे कि जमानेकी पहचान अुनमें नहीं होती। कालपुरुष होता है और अुसके अनुसार युगधर्म होता है। नित्यधर्मके साथ जब युगधर्म जोड़ दिया जाता है, तब दोनों मिलकर ही पूर्ण साधन बनता है। और हिन्दुस्तानमें अगर हम यह छोटीसी चीज सब जगह फैला दें, तो अुसमें से महान शक्तिका निर्माण होगा। परंतु आज हम अलग-अलग योजना बनाते हैं और अलग-अलग दिशाओंमें प्रयत्न करते हैं। समयके अनुकूल काम न करना भी अेक दोष ही है; और दिशा समझे बगैर काम करना तो व्यर्थ ही होता है। हमारे पास शक्ति तो बहुत है, परंतु हम अेकाग्रतासे काम नहीं कर रहे हैं। हमने असली रूपमें सर्व-सेवा-संघ नहीं बनाया है। हमारे अलग-अलग रचनात्मक काम तो चलते हैं, पर वे निस्तेज बन गये हैं। मगनवाड़ीमें काम तो चलता है, पर वर्धा शहरमें अुसका दर्शन नहीं होता। ग्रामोद्योग न शहरमें दिखाअी देते हैं, न ग्राममें। अिसकी जड़में जो दोष है, अुसकी ओर ध्यान देना हमारा कर्त्तव्य ह।

"हमारा सारा समाज न सिर्फ विकेन्द्रित है, बल्कि विकीर्ण भी है। हममें से कअी लोग रचनात्मक काम अिसलिअे करते हैं, क्योंकि वह चलता आ रहा है। अिसका नतीजा यह होता है कि अुत्तरोत्तर निराशा बढ़ती है। परंतु आज देशकी हालत अैसी है कि जनता भूखी है और सर्वोदय विचारकी अिज्जत करती है। यह अेक आश्चर्यकी बात है कि हमने अुसकी श्रद्धाके लायक कोअी पराक्रम नहीं किया फिर भी वह श्रद्धा रखती है। मैं मानता हूं कि यह चीज अुसके लिअे बहुत अनुकूल व स्वाभाविक है, अिसलिअे अुसका अिस ओर सहज आकर्षण है। तो जनता तैयार है, कार्यकर्ता भी हैं, पर अुनकी मति भ्रांत है और यह भी अुनके ध्यानमें नहीं आ रहा है कि हमें दूरदृष्टिसे जनशक्ति निर्माण करनेमें लग जाना चाहिये। लोग मुझे पूछते हैं कि हम चरखा-संघका काम करें या भूदान-यज्ञमें करें या और कहीं? तो मैं कहता हूं कि 'मेरे तो मुख रामनाम दूसरा न कोअी।' मुझे दूसरा नाम लेना ही नहीं है।

"मुझे विश्वास हो गया कि अगर हम अपने सब कामोंको समग्र दृष्टिसे देखेंगे, तो अुन कामोंके लिअे प्रतिकूल परिस्थिति देशमें नहीं है, यह मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं। बल्कि मैं तो यह भी कहता हूं कि सर्वोदय समाजसे लोगोंकी जो अपेक्षा है, वह दिन-ब-दिन बढ़ रही है। जनतामें सर्वोदय शब्दके लिअे श्रद्धा और आशा है, अिसलिअे देशमें कोअी भी अिसका विरोध नहीं कर सकता। जिस शब्दके लिअे अितनी श्रद्धा है, अुसका अनुष्ठान हम श्रद्धा और आशासे करें तो क्यों नहीं काम होगा?

"मुझे सुनाया गया कि हैदराबाद कांग्रेसमें खादीकी जो प्रदर्शनी हुअी, अुसमें बहुत ही कम बिक्री हुअी। हमें जानना चाहिये कि हमारा काम प्रदर्शनीसे नहीं बढ़ेगा, बल्कि दर्शनसे बढ़ेगा, जो आज हममें नहीं है।

"मैंने सुना है कि आंध्रमें तेलगु भाषामें कम्युनिस्ट साहित्यका बहुत प्रचार हुआ है। यहां तक कि स्त्रियां और बच्चे भी अुनके गीत गाते हैं। अुसी आंध्रमें गांधीजीके 'अनासक्तियोग' की दूसरी अेडिशन भी नहीं निकली। अिस पर आप जरा सोचिये। विचार-स्रोत ही जहां सूख रहा है, वहां बाहरके काम हम कितने भी कर, अुससे ताकत नहीं आयेगी।

"मुझे तो अिस बीमारीके बाद अितना मानसिक अुत्साह मालूम हो रहा है कि अपनी मनःस्थितिमें या बाहरकी परिस्थितिमें मैं निराशाका कोअी कारण नहीं देखता। मैं आप लोगोंसे विश्वासपूर्वक कहना चाहता हूं कि जिस किसीने भूदानमें काम किया होगा, अुसको भी अिसका अनुभव हुआ होगा और आयेगा कि हमारे लिअे निराशा है ही नहीं। अेक सत्याग्रही और भक्तके नाते निराशाका अनुभव होगा ही नहीं। मेरा मानना है कि यदि हम अेक वर्षके लिअे भी अेकाग्र हो जायं, तो बाजी हमारे हाथमें है। लोकजीवनमें अेक समय होता है। अिस समयको हम पहचानें तो कृतकार्य हो जायंगे और नहीं तो गये-बीते हो जायेंगे। आप लोग सब योग दें, तो हिन्दुस्तानका अुदय परमेश्वरकी अिच्छासे शीघ्र होगा अैसे लक्षण हैं।"

चांडिल, ५-३-'५३ नि० दे०

प्रेम द्वारा अीश्वरका साक्षात्कार

अीश्वर कोअी बादलोंमें रहनेवाली शक्ति नहीं है। अीश्वर अेक अदृश्य शक्ति है, जो हमारे भीतर रहती है; अंगुलीके नख मांसके जितने नजदीक रहते हैं, अुससे भी ज्यादा वह हमारे नजदीक होता है। हमारे भीतर कअी शक्तियां छिपी पड़ी रहती हैं; सतत संघर्षके जरिये हमें अुनका पता लगता है। अुसी तरह हम अिस सर्वोच्च शक्तिका पता लगा सकते हैं, अगर हम अुसे खोजनेके दृढ़ निश्चयसे अुसका पता लगानेकी मेहनत करें। अैसा अेक रास्ता अहिंसाका रास्ता है। यह अत्यन्त जरूरी है, क्योंकि अीश्वर हममें से हरअेकमें है। अिसलिअे हमें बिना किसी अपवादके हर मनुष्यके साथ अेकरूप हो जाना चाहिये। वैज्ञानिक भाषामें अिसे संयोग या आकर्षण कहते हैं। सर्वसामान्य भाषामें अिसे प्रेम कहा जाता है। वह हमें अेक-दूसरेके साथ और अीश्वरके साथ जोड़ देता है। अहिंसा और प्रेम अेक ही चीज है।

[१-६-'४२ के अेक खानगी पत्रमें से] मो० क० गांधी

(अंग्रेजीसे)

हमारा नया हिन्दी प्रकाशन

स्मरण-यात्रा

[बचपनके कुछ संस्मरण]

काका कालेलकर

कीमत ३-८-० डाकखर्च ०-१२-०

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद – ९

मानभूम जिलेमें श्री विनोबा

[जैसा कि पाठक जानते हैं, श्री विनोबाजी आजकल मानभूम जिले (बिहार) का दौरा कर रहे हैं। नीचेके हिस्से अुस जिलेके अुनके प्रार्थना-प्रवचनोंसे लिये गये हैं — सं०]

१

भाषा-सम्बन्धी विवाद

यहां मानभूममें बंगला और हिन्दी दोनों भाषायें बोलनेवाले मिलेजुले लोग हैं। अिस तरह दो प्रान्तोंकी सीमा पर जो जिले होते हैं वहां दो, तीन या कभी-कभी ज्यादा भाषायें भी अेकत्रित होती हैं। अैसे जिले बड़े भाग्यवान हैं, यह समझना चाहिये। क्योंकि वहां परस्पर प्रेम-भाव प्रगट करनेका और अेक-दूसरेकी भाषा सीखनेका मौका मिलता है। पर अदूरदृष्टिके कारण भाषाओंको जो गौरव और आदर देना चाहिये, वह नहीं दिया जाता है। अेक भाषा दूसरों पर लादी जाती है और नहीं तो वहांकी दोनों तीनों भाषायें छोड़कर अंग्रेजी चलायी जाती है। यह गलत चीज है।

बंगला अेक संपन्न भाषा है और शायद हिन्दुस्तानकी दूसरी भाषाओंके साहित्यकी तुलनामें अुसका अर्वाचीन साहित्य बहुत ही अूंचा है। हिन्दी न सिर्फ अेक संपन्न भाषा है, बल्कि हमारी राष्ट्र-भाषा भी है। अैसी दो भाषायें जहां अेकत्रित हुअी हैं, वहांके लोगोंकी जो यह मांग है कि विद्यार्थियोंको अपनी मातृभाषामें तालीम मिले, तो यह मांग गलत नहीं कही जा सकती, बल्कि वाजिब है। अभी हिन्दुस्तानमें अिस विषयमें दो-तीन विचार चल रहे हैं। अेक तो अुन लोगोंका, जो कहते हैं कि प्रादेशिक भाषामें शिक्षा देनी चाहिये। दूसरे लोग कहते हैं कि प्राथमिक शिक्षा प्रादेशिक भाषामें दी जाये, पर आज जैसे अंग्रेजी चलती है, अुसके बदलेमें हिन्दी चले, क्योंकि वह राष्ट्रभाषा है; और सब लड़के अुसमें अध्ययन करेंगे तो सबके लिअे सहूलियत होगी। और तीसरा विचार अुन लोगोंका है, जो कहते हैं कि अंग्रेजी अेक संपन्न भाषा है अिसलिअे अुसे नहीं हटाना चाहिये। कम-से-कम कालेजमें तो अंग्रेजी चले। अिस तरह देशमें तीन विचारधारायें चल रही हैं। और तीनोंमें देशके बड़े-बड़े विद्वान् और देशका भला चाहनेवाले लोग हैं।

प्रान्तीय बनाम राष्ट्रभाषा

मेरी रायमें सारी तालीम प्राथमिकसे समाप्ति तक प्रादेशिक भाषामें ही दी जाय और अुसके साथ-साथ राष्ट्रभाषा लाजिमी तौर पर सबको सिखायी जाये। और अगर अेक विश्वविद्यालयके प्रोफेसर दूसरे विश्वविद्यालयमें व्याख्यान देनेके लिअे जाते हैं और वहांकी भाषा नहीं जानते हैं, तो अुन्हें राष्ट्रभाषामें व्याख्यान देनेकी अिजाजत होनी चाहिये। अपनी यह राय मैंने बहुत दफा प्रकट की है। और अिसीमें हिन्दुस्तानका कल्याण है, अैसा मुझे लगता है। अिसमें हिन्दीको कोअी क्षति नहीं पहुंचेगी, बल्कि अुससे हिन्दी बढ़ेगी। हिन्दुस्तानकी बहुतसी भाषायें समर्थ हैं और अुनमें शब्द बनानेकी शक्ति है। अैसी भाषाओंकी पढ़ाअी हो और राष्ट्रभाषा भी लाजिमी तौर पर सिखायी जाये, तो अिससे राष्ट्रभाषाका महत्त्व कम नहीं होगा, बल्कि राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषायें अेक-दूसरीको संपन्न करेंगी। लेकिन आज विद्वानोंमें अिस विषयमें मतभेद है और अुससे कुछ कटुता पैदा हो गअी है। मैं चाहूंगा कि जहां सौभाग्यसे बंगलाका सम्पर्क आता है, जो बहुत समृद्ध भाषा है, वहां हिन्दीके साथ-साथ बंगला भी लाजिमी तौर पर सिखायी जाये। और बंगाली लोगोंको हिन्दी सिखायी जाय। अिसमें दोनोंका लाभ है। किसीकी भी हानि नहीं है। मैं अब यह भी कहता हूं कि जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, अुनको लाजिमी तौर पर दूसरी अेक प्रादेशिक भाषा सिखायी जानी चाहिये। पहले मैं सिर्फ सिफारिश करता था कि अुन्हें दूसरी भाषा सीखनी चाहिये, पर अब मैं यह कहता हूं कि हर विद्यार्थीको हिन्दीके साथ-साथ दूसरी अर्वाचीन भाषा लाजिमी तौर पर सिखायी जाये। मेरा मानना है कि अिस प्रश्न पर सब शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे सोचें, तो कुछ भी कटुता पैदा नहीं होगी।

आज कुछ लोगोंको जाने-अनजाने अैसा लगता है कि हिन्दी किसी भी तरहसे सब लोग सीखें। हम भी चाहते हैं कि सब लोग हिन्दी सीखें। पर वह लादी नहीं जानी चाहिये, क्योंकि अुससे कटुता पैदा होती है, जैसा कि आज दक्षिण भारतमें हो रहा है। अिसलिअे जो दूरदृष्टिसे सोचेंगे, अुनके ध्यानमें आयेगा कि सब लोग राष्ट्रभाषाके तौर पर हिन्दी सीखें, यही अच्छा है। अिससे अधिक आग्रह नहीं रखना चाहिये। हां, जो विद्यार्थी हिन्दी माध्यमके जरियेसे सीखना चाहते हैं, अुनको सीखनेकी अिजाजत होनी चाहिये। हिन्दी लादी न जाय यही अुसके लिअे हितकर है और अिसीमें हिन्दीका भला है। लेकिन अिस विषयको लेकर जो कटुता पैदा हुअी है, मैं नहीं मानता कि अुसका कोअी कारण है।

[पुरुलियामें ता० १८-३-'५३ की प्रार्थना-सभामें दिये गये प्रवचनसे।]

२

जमीन बनाम भाषा

मानभूम जिलेके कार्यकर्त्ताओंमें भाषाके झगड़े हैं, पर बंगाली और हिन्दी ये दो शब्द ही हैं और शब्द खाये नहीं जाते हैं। खानेके लिअे तो रोटी चाहिये। लोगोंको रोटीकी भूख है। वह हिन्दी या बंगालीसे नहीं मिटेगी। यह सवाल तो प्रेम और दयासे हल होगा। अिसलिअे पहले यह जरूरी है कि प्रेम पैदा हो। अेक-दूसरेके लिअे मनमें प्रेमभाव पैदा होगा, तो हिन्दुस्तानके सारे झगड़े मिट सकते हैं। अिसलिअे मैं कहूंगा कि जिनके मनमें गरीबोंके लिअे प्रेम है, अैसे सब भाअी भूदान-यज्ञके काममें लग जायें। कुछ लोग कहते हैं कि पहले हमारी भाषाका झगड़ा मिटने दो फिर हम यह काम करेंगे। लेकिन आपके पड़ोसीके घरमें आग लगी हो तो क्या आप यह कहेंगे कि बंगाली-हिन्दीका झगड़ा मिटने दो, फिर जायेंगे आग बुझाने? दुनियामें कुछ काम अैसे होते हैं, जो फौरन करने होते हैं। बंगाली और हिन्दी, दोनों सैकड़ों वर्षोंकी भाषायें हैं। रवीन्द्रनाथ, चैतन्य और रामकृष्णकी बंगालीको कौन दबा सकता है? अिसलिअे भाषाके लिअे कोअी खतरा है ही नहीं। पर भूमिका मसला अत्यन्त महत्त्वका है। पड़ोसीके घरमें आग लगी है यह जो मैंने कहा, वह अक्षरशः सत्य है।

[श्री विनोबा द्वारा गढ़जयपुर, मानभूममें ता० २०-३-'५३ को दिये गये प्रार्थना-प्रवचनकी रिपोर्टसे]

३

मध्यम वर्ग

मुझे अेक भाअीने पूछा कि आप गरीबोंका खयाल रखते हैं, पर मध्यमवर्गकी ओर भी देखिये, क्योंकि अुनकी भी हालत बहुत खराब है। गरीबोंकी हालत कुछ तो ठीक है, क्योंकि वे हाथसे काम करते हैं और अुन्हें गरीबीमें जीवन बितानेकी आदत है। परन्तु मध्यमवर्गवालोंके पास तो अुत्पादनका कोअी साधन नहीं है। और श्रीमानोंके पास जैसा पैसा होता है, वैसा पैसा भी अुनके पास नहीं है। अिसके जवाबमें मैंने कहा कि हम भूमिहीनोंको जमीन देंगे तब मध्यमवर्गवालोंमें से कोअी मांगेगा तो अुसे भी देंगे, परन्तु अुसे खुद अपने हाथों काश्त करनी होगी। मध्यम वर्गवालोंकी आज जो दुर्दशा है, अुसका यही कारण है कि वे अुत्पादनका कोअी काम नहीं जानते हैं। अिसका अुपाय यही है

कि आजकी तालीममें कोअी-न-कोअी अुद्योग दाखिल किया जाय। आज स्कूलोंमें परिश्रमका काम नहीं सिखाया जाता, परन्तु तालीममें कोअी-न-कोअी अुद्योग सिखाना जरूरी है। कोअी बी० अे० हुआ और बुनकरका काम कर रहा है, कोअी अेम० अेस-सी० हुआ और खेतीका काम कर रहा है, अैसा होना चाहिये। अपनी-अपनी विद्याका अुपयोग अुन्हें अुस अुस काममें करना चाहिये, तभी शिक्षितोंकी बेकारी दूर होगी और देशकी अुन्नति होगी। जो खुद काश्त करनेके लिअे तैयार हैं, अुन्हें हम जमीन देंगे। काशीमें वैदिक ब्राह्मणोंने मुझसे जमीन मांगी। मैंने पूछा कि क्या वे खुद काश्त करेंगे? अुन्होंने खुद काश्त करना कबूल किया और कहा कि काश्त करना तो प्राचीन ऋषियोंका धर्म माना जाता था। मुझे बहुत खुशी हुअी और मैंने अुन्हें जमीन देनेका अिन्तजाम किया। मैं हरअेक भूमिहीनको जमीन देनेके लिअे तैयार हूं, चाहे वह किसी भी वर्गका हो, अगर वह काम करनेके लिअे तैयार है। आज श्रीमान्, मध्यमवर्ग और गरीब सबकी हालत खराब है। श्रीमानोंके पास पैसे हैं, पर अुनके घरमें झगड़े हैं और शरीरमें रोग हैं। जो हाथसे काम नहीं करते अुन्हें आरोग्य लाभ नहीं होता, यह परमेश्वरका कानून है। आजकल लोग पैदल भी नहीं घूमते। अिस तरह हमने पांवका अुपयोग करनेकी आदत छोड़ दी, तो धीरे-धीरे हमारे पांव दुर्बल हो जायंगे और फिर हम बिना पांवके प्राणी बन जायेंगे। आज सभी वर्गोंके लोग दुःखी हैं। किसीको मानसिक दुःख है, किसीको धनका दुःख है और किसीको शारीरिक दुःख है। अिन्होंको हमारे शास्त्रोंने त्रिताप कहा है। अगर हम श्रम करेंगे, तो अिन त्रितापोंसे मुक्त हो सकेंगे।

[विनोबाजी द्वारा झालदामें ता० २२–३–'५३ को दिये गये प्रार्थना-प्रवचनका रिपोर्टसे।]

समाचारपत्रोंकी स्वाधीनता

[अिस विषय पर गांधीजीके लेखोंमें से चुने हुअे कुछ विचार नीचे दिये जाते हैं।]

समाचारपत्रका अेक अुद्देश्य लोगोंकी भावनाको समझना और अुसे प्रगट करना है; दूसरा अुद्देश्य अुनमें वांछनीय भावना जगाना है; और तीसरा अुनके दोषोंको निर्भयतापूर्वक आगे रखना है।

(अिण्डियन होमरूल)

समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका पूरा मान किया जा रहा है, अैसा तभी कहा जा सकता है जब कि वे मामलोंकी कड़ी-से-कड़ी टीका कर सकें और यहां तक कि अुन्हें गलत रूपमें भी पेश कर सकें। अुनके झूठे या हिंसक प्रचारसे अपनी रक्षाके लिअे सरकार अुन पर जबानबन्दी लगाये या समाचारपत्रका प्रकाशन ही रोक दे, अैसा नहीं होना चाहिये। अुसे चाहिये कि वह अपराधीको सजा दे, पर समाचारपत्रों पर किसी तरहका बन्धन न डाले।

('यंग अिंडिया', १२ जनवरी, '२२)

मैंने शुरूसे ही अिन पत्रोंमें ('नवजीवन', 'यंग अिंडिया' आदिमें) विज्ञापन न लेनेकी नीति रखी। मुझे नहीं लगता कि अिससे अुनका कोअी नुकसान हुआ है। अुलटे मेरा विश्वास है कि अिस नीतिसे अिन पत्रोंकी स्वाधीनता कायम रखनेमें बड़ी मदद हुअी है।

(आत्मकथा)

मैं नहीं मानता कि समाचारपत्रोंको नुकसान सहकर भी या विज्ञापन लेकर चलाते ही रहना चाहिये। अगर समाचारपत्र कोअी अैसी जरूरत पूरी कर रहा है, जिसे जनता महसूस करती है, तो वह अपना खर्च खुद पूरा कर लेगा।

('यंग अिंडिया', अप्रैल, '२४)

पत्र चलानेका अेक ही अुद्देश्य होना चाहिये — सेवा।

(आत्मकथा)

सेठ श्री वालचंद हीराचन्द

कुछ समय पहले भारतके अेक प्रसिद्ध और साहसी अुद्योगपति सेठ श्री वालचंद हीराचन्दका ७१ वर्षकी अुमरमें अवसान हो गया। वे सिद्धपुरकी यात्रा पर गये थे और वहीं अचानक अुनका देह छूट गया।

अेक मित्रने यह समाचार जानकर कहा कि सरदार पटेलका जमाना अब खतम हो रहा है। सेठ वालचन्द सरदार पटेलके मित्र थे। अुद्योगपतियोंमें भी सरदार साहबके अनेक मित्र थे। सरदारश्रीके मैत्री संबंधमें अेक बात यह देखनेमें आती है कि अुनके मित्र साहसी, बहादुर और बड़े कार्यकुशल होते हैं। अिन गुणोंकी वे स्वभावतः प्रशंसा करते और अैसे लोगोंको देशके काममें खींचनेके लिअे सदा तत्पर रहते थे। सेठ वालचन्दमें ये गुण अच्छी मात्रामें थे। जिस जमानेमें जहाजरानीका अुद्योग ब्रिटिश जहाजरानीके मुकाबले खड़ा भी नहीं रह सकता था, अुस जमानेमें सेठ वालचन्दने यह साहस किया और कड़े विरोधका सामना करके भी देशके अिस नष्ट हो चुके अुद्योगका विकास किया और अुसे आगे बढ़ाया। हमारे कपड़ेके प्राचीन अुद्योगकी तरह हमारा जहाजरानीका अुद्योग भी दुनिया भरमें मशहूर था। सब कोअी जानते हैं कि अुसका नाश हुआ और अुसका स्थान युरोपके अिस अुद्योगने लिया। भारतमें अुसे फिरसे खड़ा करनेमें सेठ वालचन्दने अगुवाअी की। अुसकी कदर राष्ट्रने अिस तरह की कि देशने स्वतंत्रताके सारके रूपमें १९३० में अंग्रेज सरकारके सामने जो ११ शर्तें रखी थीं, अुनमें देशके जहाजरानीके अुद्योगको प्रोत्साहन और राहत देनेकी भी अेक शर्त रखी गअी थी। अिस तरहका साहस करके श्री वालचन्द सेठने देशकी प्रगतिमें कीमती भाग लिया, यह हमें कृतज्ञतापूर्वक याद करना चाहिये।

आजादीकी लड़ाअीके अुस युगमें हमारे अुद्योगपति अिस तरह अपनी देशभक्ति और साहसशक्ति दिखा सकते थे। आज जमाना बदल गया है। अब हम अुद्योगपतियोंसे यह आशा रखते हैं कि वे आम जनताके छोटे-मोटे अुद्योगों और ग्रामोद्योगोंकी रक्षाका साहस करें और अुनके विकेन्द्रित स्वरूपके संगठनमें अपनी कुशलताका अुपयोग करें। विशेष बात तो यह है कि अब वे अैसे अुद्योगोंके विरुद्ध अपने यंत्रोद्योगोंकी रक्षाका प्रयत्न न करें। गांधीजी यह चीज अुद्योगपतियोंको अपने ट्रस्टीशिपके सिद्धान्त द्वारा याद दिलाते थे। अुस सिद्धान्तका पालन कर दिखानेका युग अब शुरू होता है। अुसमें भी हमारे अुद्योगपति सेठ वालचन्दका अनुसरण करके नये युगकी आवश्यकताके अनुसार नये ढंगसे अपना साहस और देशभक्ति प्रकट करें, तो कहा जायगा कि हमने अपने दिवंगत अुद्योगपतिको सच्ची अंजलि अर्पण की। क्योंकि सेठ वालचन्दके कामोंसे यही बड़ा सबक लिया जा सकता है कि आज नये युगको शोभा देनेवाली नअी अुद्योग-नीतिको जन्म दिया जाय।

१३-४-'५३ मगनभाअी देसाअी

(गुजरातीसे)

विषय-सूची

		पृष्ठ
हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली	राजेन प्रसाद	५७
केनियामें जातीय साम्राज्यवाद	फेनर ब्रॉकवे	५८
भूदान-आन्दोलनमें प्राप्त भूमि	कृष्णराज मेहता	५९
दो सवाल	मगनभाअी देसाअी	६०
हमारी महान विरासत	सुशीला नय्यर	६१
निराशाका कोअी कारण नहीं	नि० दे०	६२
प्रेम द्वारा अीश्वरका साक्षात्कार	गांधीजी	६२
मानभूम जिलेमें श्री विनोबा		६३
समाचारपत्रोंकी स्वाधीनता	गांधीजी	६४
से श्री वालचंद हीराचंद	मगनभाअी देसाअी	६४